श्री अरविंद कर्मधारा

अपने जीवन को सत्य की सच्ची खोज में परिणत कर दो और वह जीने के योग्य बन जायेगा ॥

श्रीमाँ

21 फरवरी 2019 वर्ष 49 अंक 2

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम-दिल्ली शाखा का मुखपत्र

21 फरवरी, 2019

वर्ष-49 - अंक-2

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर फकीर`

सम्पादक

त्रियुगी नारायण

सहसम्पादन

रूपा गुप्ता

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, सुश्री रंगम्मा

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा (नि:शुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

sakarmdhara@gmail.com

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा

श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26524810, 26567863

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

कोलाहल

यह सब कोलाहल किसलिये, यह दौड़-धूप, यह व्यर्थ की थोथी हलचल किसलिये? यह बवंडर किसलिये जो मनुष्यों को झंझावात में फँसे हुए मक्खियों के दल की भाँति उड़ाये ले जाता है? यह समस्त व्यर्थ में नष्ट हुई शक्ति, ये सब असफल प्रयत्न कितना शोकप्रद दृश्य उपस्थित करते हैं! लोग रस्सियों के सिरे पर कठपुतलियों की भाँति नाचना कब बन्द करेंगे? वे यह भी नहीं जानते कि कौन या क्या वस्तु उनकी रस्सियों को पकड़े उनका नचा रही है। उनको कब समय मिलेगा शांति से बैठकर अपने-आप में समाहित होने का, अपने-आपको एकाग्र करने का, उस आंतरिक द्वार को खोलने का जो तेरे अमूल्य खज़ाने, तेरे असीम वरदान पर पर्दा डाल रहा है?

श्रीमाँ

इस अंक में..

सम्पादकीय

1. प्रार्थना और ध्यान — 5
श्री माँ

2. श्री माँ का अविर्भाव और कार्य — 7
शंकर प्रसाद खरे

3. पूर्णज्ञान — 10
श्रीमाँ

4. एक महत्तर सत्य — 11
श्री अरविन्द

5. मुझे निज चरणों में — 12
रविन्द्रनाथ ठाकुर

6. करूणा दीदी की डायरी से — 13

7. कर्मफल — 14
श्याम कुमारी

8. अचंचल रहो — 15
श्रीमाँ

9. सावित्री पर श्रीमाँ की वार्ता — 16
एक संकलन

10. भागवत युद्ध — 18
सुरेन्द्रनाथ जौहर

11. विचार और सूत्र — 25
श्रीमाँ

12. भय से मुक्ति-विधियाँ — 29
श्रीमाँ के वचन

13. रसोईघर विस्तार भवन — 32

14. 12 फरवरी 2019, श्री अरबिंद आश्रम - दिल्ली शाखा — 33
दीपा बौरा

15. आश्रम गैलेरी — 37
खुशहाली परियोजना

16. प्रेरणायें — 38

21 फरवरी, 2019

सम्पादकीय

श्री माँ के जन्मदिन पर प्रकाशित कर्मधारा का यह अंक श्री माँ के विशेष आशीर्वाद से परिपूर्ण है। दिल्ली आश्रम की स्थापना व श्री माँ का जन्मदिन दोनों का समय लगभग एक ही है। दिल्ली आश्रम की स्थापना किस प्रकार अनेक कठिनाइयों से एक महती भागवत युद्ध के उपरान्त हुई, माँ की इस सम्बन्ध में पूर्वयोजना और चाचा जी श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर के अथक प्रयासों से हम इस अंक में अवगत हो पायेगें। 'सावित्री के विषय में' श्री माँ के विचारों की यह नयी श्रखंला हम इस अंक से आरम्भ कर रहे हैं।

साथ ही दिल्ली आश्रम की अनेक गतिविधियों से परिचित कराता यह अंक आशा है सुधि पाठकों की जिज्ञासाओं को पूरा करने का साधन होगा। आपके विचारों और सुझावों का स्वागत है।

रूपा गुप्ता

प्रार्थना और ध्यान

श्री माँ

सब कुछ एकत्र होकर ऐसी स्थिति उत्पन्न कर रहा है कि अब मैं आदतों की बनी कोई सत्ता ना रह जाऊँ, और इस नयी अवस्था में इन जटिल और अस्थिर परिस्थितियों के बीच जितनी पूर्णता के साथ तेरी अक्षर शांति मुझे मिली है उतनी पूर्णता के साथ पहले कभी नहीं मिली ; या यों कहें कि मेरा 'मैं' कभी इस तरह एकदम गायब नहीं हुआ कि एकमात्र तेरी दिव्य शांति ही बनी रह जाये। सब कुछ सुन्दर, सुसामंजस्य और शांत है, सब कुछ तुझसे भरा हुआ है। तू ही देदीप्यमान सूर्य में चमक रहा है, तू ही उस बहते हुए मंद-मधुर समीर में अनुभूत हो रहा है, तू ही हृदयों में प्रकट हो रहा है और प्रत्येक सत्ता में निवास कर रहा है। कोई पशु , कोई पौधा ऐसा नहीं है जो तेरी बात मुझसे ना कहता हो और जो कुछ मैं देखती हूँ उस सब पर तेरा ही नाम लिखा हुआ है।

हे मेरे मधुर स्वामी! क्या तूने अंततः यह मंजूर किया है कि मैं पूर्ण रूप से तेरी हो जाऊँ और मेरी चेतना निश्चित रूप में तेरी चेतना के साथ युक्त हो जाये? मैंने ऐसा क्या किया है जिससे मैं इतने बड़े सौभाग्य की अधिकारिणी बन गयी हूँ? इसकी कामना करने के सिवा, इसकी निरन्तर इच्छा करने के सिवा और कुछ भी मैंने नहीं किया है और यह तो बहुत थोड़ा है।

परन्तु हे नाथ, अब चूंकि मेरे अन्दर मेरी ही अपनी इच्छा नहीं है, बल्कि तेरी इच्छा निवास कर रही है, तू ऐसा कर सकता है कि यह सौभाग्य सबके लिये उपयोगी साबित

हो तथा इसके अस्तित्व का उद्देश्य यथा सम्भव अधिक-से-अधिक लोगों को तेरा दर्शन प्रदान करना हो ।

हे भगवान्! सब लोग तुझे जान सकें, तुझसे प्रेम कर सकें, तेरी सेवा कर सकें; सब लोग चरम आत्म-निवेदन की अवस्था प्राप्त कर सकें!

हे प्रभु! हे दिव्य प्रेम! संसार भर में फैल जा, जीवन को पुनरूज्जीवित कर, बुद्धि को आलोकित कर, अहंकार के बाँधों को भंग कर, अविद्या की बाधाओं को दूर कर, पृथ्वी के परम अधीश्वर के रूप में चमक उठ!

मनुष्य को, जैसे कि गीता जोर देकर कहती है, निरुत्साह से मुक्त चेतना के साथ- अनिर्विण्णचेतना- योग के पथ पर आगे बढ़ते जाना सीखना चाहिये। यदि कोई फिसल भी जाये तो उसे अपनी स्थिति को सुधार लेना चाहिये और निरुत्साहित ना हो भागवत पथ पर चल पड़ना चाहिये। मनोभाव यह रखना चाहियेः-

यदि मैं भगवान से चिपका रहूँ तो वह मुझसे वचनबद्ध हैं चाहे जो भी घटित हो मैं उसे कभी बन्द नहीं करूँगा।

श्री अरविन्द

श्री माँ का अविर्भाव और कार्य

शंकर प्रसाद खरे

यह तो सर्वविदित है कि श्री अरविन्द ने पांडिचेरी आने के बाद अपने योग और आध्यात्मिक साधना का एक महान लक्ष्य प्रारंभ से ही निर्धारित और घोषित किया था । वह महान लक्ष्य था पृथ्वी पर वर्तमान विकास क्रम के अंतर्गत जो अभी तक जड़ पदार्थ से प्रारम्भ होकर प्राण और मन-बुद्धि तक पहुँचा है और जिसके फलस्वरूप मनुष्य जाति का आविर्भाव व विकास हुआ है उसमें एक नये दिव्य तत्व, भागवत् ऋप्त-चैतन्य, "अतिमानस ऋप्तशक्ति का अवतरण साधित करना और इस तरह विकास क्रम में पृथ्वी पर अतिमानव के आविर्भाव की एक नयी श्रृंखला जोड़ देना । श्री अरविन्द ने अपनी सूक्ष्म और तत्वदर्शी दृष्टि एवं योग-साधना द्वारा यह संधान और अनुभव किया था कि समस्त सृष्टि के मूल में भागवत् विधान के अंतर्गत एक सत्य एवं दिव्य सृजनशील चेतना अवस्थित है । यह चेतना मानवीय जीवन की वर्तमान सभी समस्याओं से उसे मुक्त करा सकती है, उसे रूपान्तरित कर दिव्य बना सकती है । उनका कहना था कि "अतिमानस एक सत्य है और नैसर्गिक विकास क्रम के अंतर्गत उसका पृथ्वी पर अवतरण अनिवार्य है।"

आपको विदित है कि श्री अरविन्द की योगसाधना में किस प्रकार श्री माँ सहयोगिनी बनकर आईं जो वास्तव में भगवान् की प्रकार आद्याशक्ति ही थीं- और श्री अरविन्द के लक्ष्य के अनुसार उन्होंने, अतिमानस को पार्थिव चेतना में उतारने का कार्य पूरा किया । **यह अवतरण दि0 21.2.56 के सायंकालीन सामूहिक ध्यान के अवसर पर हुआ था ।** यह तारीख अंग्रेजी कैलेण्डर के अनुसार हर चौथे वर्ष **Leap Year** में आती है । यह दिन वर्ष की सामान्य दिन संख्या के अतिरिक्त है । श्री माँ ने इसे "भगवान् का दिन" कहा है।

अतिमानस चित्शक्ति के अवतरण और भौतिक तत्व में प्रविष्ट होकर सक्रिय रूप से प्रभावशील होने के बाद से ही श्री अरविन्द की भविष्य दृष्टि के अनुसार संसार में दिव्य सृजन और रूपान्तर का कार्य प्रारंभ होकर अधिक अग्रसर हो रहा है । श्री अरविन्द ने बहुत पहले कहा था, "अतिमानस का कार्य कराने हेतु श्री मां का आविर्भाव हुआ है और इस अवतरण के द्वारा ही यहाँ (पृथ्वी पर) उनकी अभिव्यक्ति (पूर्ण रूप से) संभव होगी ।" यदि हम गहराई से देखें तो इस वाक्य की दोनों क्रियाओं का पारस्परिक संबंध बहुत स्पष्ट हो जाता है । अतिमानस का दिव्य चैतन्य-तत्व श्री मां की ही सत्यशक्ति है जो समस्त प्रकृति में उसके दिव्य रूपान्तर व विकास क्रम को अग्रसर करने के

लिये पृथ्वी पर अवतरित और समाहित हो गई है । इस अवतरण का प्रभाव जड़, चेतन, सभी स्तर के जीवधारियों पर पड़ा है। मानव जीवन में अथवा मानसिक स्तर में जो अज्ञान-अन्धकार या अपूर्णताएं थीं उसमें अब " प्रकाशमय-मन " (Mind of Light) कार्य करने लगा है और उसमें विशुद्ध भागवत चैतन्य व दिव्य जीवन की अभीप्सा जागृत होने की संभावना बढ़ गई है। स्वयं श्री अरविन्द और श्री मां के मानव रूप में दिव्य या अति मानवता धारण करने का परम् दृष्टांत एक ओर पृथ्वी पर भगवान् की नवीनतर और पूर्णतर अवतरण की घटना है तो दूसरी ओर पार्थिव विकासक्रम में एक उच्च और नये आरोहण की एक अभूतपूर्व घटना है । उनके द्वारा अतिमानस का अवतरण भावी अतिमानव जाति के पूर्ण अविर्भाव की अनिवार्य भवितव्यता है। " अतिमानस ही अतिमानव है।" अतिमानस के अवतरण के बाद श्री मां ने तो कई बार जोर देकर कहा है कि नई सृष्टि जन्म ले चुकी है । इतना ही नहीं, उनका कहना था कि भौतिक प्रकृति भी अब अतिमानव की क्रियाशीलता और रूपान्तरकारी प्रभाव के प्रति नमनीय और सहयोगिनी बन गई है । भौतिक विज्ञान भी अब स्वयं आध्यात्मिक चेतना और आत्मतत्व के प्रति आस्थावान हो गया है। वह मानने लगा है कि समस्त सृष्टि के पीछे एक सचेतन शक्ति है जो सभी क्रियाकलापों व आकारों के सृजन, संचालन एवं विलय अथवा परिवर्तन की प्रेरक अथवा कारण है। इस प्रकार भौतिक विज्ञान भी स्वयं आध्यात्मिक चेतना और आत्मतत्व के प्रति आस्थावान हो गया है। वह मानने लगा कि समस्त सृष्टि के पीछे एक सचेतन शक्ति है जो सभी क्रियाकलापों व आकारों के सृजन, संचालन एवं विलय अथवा परिवर्तन की प्रेरक अथवा कारण है। इस प्रकार भौतिक विज्ञान और आध्यात्मिक प्रकाश पृथ्वी पर मानवजीवन को बाह्य और आंतरिक एकता, परिपूर्णता, बाहुल्य और सामंजस्य की ओर ले जा रहे हैं।

अब मुख्य आवश्यकता है कि मानव, जिसे मानसिक रूप से स्वयं सचेतन और आत्मनिर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रकृति ने दी है, स्वतः अतिमानस चेतना की ओर खुले, उसे समझे, जीवन में उसके प्रभाव को स्वीकार करे और उसे अंदर धारण कर उसके द्वारा रूपांतरित होने की अभीप्सा करे । श्री मां ने अपने एक संदेश में कहा था-

"To know is good, to live is better,

To be-that is perfect."

यह उपलब्धि, यह रूपान्तर कार्य उन्हीं में साधित होगा जो अपने समस्त जीवन-व्यापार को भागवत चैतन्य शक्ति और ज्ञान-प्रकाश की ओर खोल देंगे, उससे परिचालित होंगे और अपने आपको भगवती माता के प्रति पूर्णरूप से समर्पित करेंगे। यह सहयोग मानव की ओर से आवश्यक तो है पर यह साधना एवं उसकी सिद्धि श्री मां ही साधित करेंगी। जिस प्रकार अतिमानस के

अवतरण का कार्य स्वयं भगवती श्री मां की महान् साधना, तपस्या और करुणा के द्वारा सिद्ध हुआ उसी प्रकार उसके पूर्ण विकास, मानव प्रकृति के रूपांतर का कार्य, एवं अतिमानव जाति की सृष्टि भगवती श्री मां की साधना, तपस्या और करुणा के द्वारा ही सिद्ध होगी । इसीलिये, जैसा श्री अरविन्द का कहना है- अतिमानस के अवतरण के बाद, उसके सक्रिय होने पर ही "यहाँ (पृथ्वी पर) श्री मां की अभिव्यक्ति पूर्ण रूप से संभव होगी।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि श्री माँ, जो मानव जाति के बीच एक विशेष कार्य के लिये अवतरित हुई थी, हमारे बीच एक प्रभावपूर्ण दृष्टांत रखते हुये और एक नये विकास का मार्ग प्रशस्त करते हुए आज यद्यपि भौतिक मानवीय आवरण से तिरोहित हो गई हैं पर अतिमानस शक्ति चैतन्य और भागवत व्यक्तित्व के रूप में वे हमारे हृदय, मन-प्राण और शरीर चेतना पर सक्रिय रूप से प्रभावशाली हैं और हमारा पथ प्रदर्शन कर रही हैं । वे शाश्वत और परात्परा भगवती माँ हैं। श्री अरविन्द अपने महाकाव्य सावित्री में श्री माँ और उनकी कार्य शक्ति का वर्णन करते हुए लिखते हैः --At the head she stands of birth and toil fate,

In their slow round the cycles turn to her call;

Alone her hands can change Time's dragon base.

(Savitri, Book III, Canto 2)

सदा ऐसे व्यवहार करो जैसे श्रीमाँ तुम्हें देख रही हैं क्योंकि सचमुच ही वे सदा ही विद्यमान हैं।

श्रीमाँ की जागतिक विद्यमानता सर्वदेशीय सार्वकालिक सर्वसमर्थ है। श्रीमाँ की सीमित सूक्ष्मभौतिकीय विद्यमानता भी इससे भिन्न-विलग नहीं है।

श्रीअरविंद

पूर्णज्ञान

श्रीमाँ

जैसा कि गीता ने बल देकर कहा है, इसकी कसौटी हमारे अन्दर है। वह यह कि अन्तरात्मा को लालसा, आसक्ति से मुक्त रखा जाय, पर साथ ही इसे अकर्म के प्रति आसक्ति से तथा कर्म करने के अहंपूर्ण आवेग से भी मुक्त रखा जाये, पुण्य के बाह्य रूपों के प्रति आसक्ति तथा पाप के प्रति आकर्षण – दोनों से एकसमान मुक्त रखा जाये। इसका मतलब है एकमेव आत्म में निवास करने तथा उसी में कर्म करने के लिए "अहंता" और ममता से मुक्त होना; विराट पुरुष के व्यक्तिगत केन्द्र के द्वारा कर्म करने से इन्कार करने के अहंकार का त्याग करना और साथ ही अन्य सबकी सेवा को छोड़कर केवल अपने वैयक्तिक मन, प्राण और शरीर की सेवा करने के अहंकार का भी त्याग करना। आत्मा में निवास करने का अर्थ यह नहीं कि हम केवल अपने लिए अनन्त में इस प्रकार रहने लगें कि निर्व्यक्तिक आत्मानन्द के उस महासागर में निमग्न होकर सब वस्तुओं की सुध ही बिसार दें; बल्कि इसका मतलब है उस परम आत्मा की तरह तथा उसी में निवास करना जो इस देह में तथा सब देहों में और साथ ही सब देहों से परे भी समान रूप से विद्यमान है। यही है पूर्णज्ञान।

साधना का अर्थ है योगाभ्यास करना। तपस्या का अर्थ है साधना का फल पाने तथा निम्न प्रकृति को जीतने के लिये संकल्पशक्ति को एकाग्र करना। आराधना का तात्पर्य है भगवान की पूजा करना, उन्हें प्रेम करना, आत्मसमर्पण करना, उनको पाने की अभीप्सा करना, उनका नाम जपना, उनसे प्रार्थना करना। ध्यान है चेतना का भीतर में केन्द्रीभूत हो जाना, मनन-चिन्तन करना, अन्दर समाधि में चला जाना। ध्यान, तपस्या और आराधना ये सभी साधना के अंग हैं।

श्री अरविन्द

एक महत्तर सत्य

श्री अरविन्द

मेरे कहने का अभिप्राय था पृथ्वी पर विज्ञानमयी चेतना का अवतरण; विज्ञानमय लोक से नीचे जितने भी सत्य हैं वे सभी (यहाँ तक कि मनोमय लोक का उच्चतम आध्यात्मिक सत्य भी, जो अब तक के अभिव्यक्त सभी सत्यों में सर्वोच्च है) या तो आंशिक हैं या आपेक्षिक अथवा यों कहें कि अपूर्ण हैं और पार्थिव जीवन को रूपान्तरित करने में असमर्थ हैं; वे अधिक-से-अधिक इस जीवन को थोड़ा-सा परिवर्तित और प्रभावित भर कर सकते हैं। विज्ञान वह सत्यं ऋतं बृहत् है जिसका वर्णन प्राचीन ऋषि कर गये हैं; उसकी अब तक कुछ-कुछ झलक ही मिलती रही है, कभी-कभी उसका थोड़ा-सा अप्रत्यक्ष प्रभाव या दबाव ही पड़ता रहा है, पर कभी इस पार्थिव चेतना के अन्दर उसका अवतरण करा कर उसे स्थापित नहीं किया गया है। उसका इस तरह अवतरण कराना ही हमारे योग का उद्देश्य है।

परन्तु यहाँ इस विषय में निरर्थक बौद्धिक वाद-विवाद करना ठीक नहीं। हमारी बुद्धि इस बात को जरा भी नहीं समझ सकती कि विज्ञान क्या है और तब भला उस विषय में बुद्धि के द्वारा तर्क-वितर्क करने से लाभ ही क्या जिसे वह जानती ही नहीं? तर्क-वितर्क के द्वारा नहीं, बल्कि सतत अनुभूति के द्वारा, चेतना के विकास तथा ज्योति के अन्दर उसके प्रसारण के द्वारा ही हम बुद्धि के परे अवस्थित चेतना के उन उच्चतर स्तरों में पहुँच सकते हैं जहाँ से हम भागवत प्रज्ञा को देखना आरम्भ कर सकते हैं। पर वे स्तर भी विज्ञान नहीं हैं, वे केवल उसके ज्ञान को थोड़ा-बहुत ग्रहण कर सकते हैं।

वैदिक ऋषियों ने पृथ्वी पर उतार लाने के लिए कभी विज्ञान को प्राप्त नहीं किया अथवा उन्होंने उसका शायद प्रयास भी नहीं किया। उन्होंने केवल व्यक्तिगत रूप से विज्ञानमय लोक में पहुँचने का प्रयत्न किया था, पर उसे नीचे नहीं उतारा और ना उसे पार्थिव चेतना का एक स्थायी अंग ही बनाया। उपनिषदों में भी कुछ ऐसे मन्त्र मिलते हैं जिनमें यह संकेत किया गया है कि इस पार्थिव शरीर को रखते हुए सूर्य (विज्ञान के प्रतीक) के द्वार से होकर जाना असम्भव है। इसी विफलता के कारण भारत का आध्यात्मिक प्रयास मायावाद में पर्यवसित हुआ। परन्तु हमारे योग में आरोहण और अवरोहण की दो गतियाँ हैं; इसमें साथक क्रमशः चेतना के एक स्तर से दूसरे स्तर में ऊपर उठता है और साथ-ही-साथ इन स्तरों की शक्ति को केवल मन और

प्राण के अन्दर ही नहीं, प्रत्युत् अन्त में शरीर तक में नीचे उतार लाता है और इन स्तरों में जो सबसे ऊपर है, जिसे प्राप्त करना इस योग का लक्ष्य है, वह है विज्ञानमय लोक। जब विज्ञान को नीचे उतारा जा सकेगा तभी पार्थिव चेतना का दिव्य रूपान्तर होना सम्भव होगा।

4 मई 1930

मुझे निज चरणों में

रविन्द्रनाथ ठाकुर

मुझे निज चरणों में झुका ले!
मेरी आँखों के जल में मेरा अहं पिघलने दे,
मेरा जीवन बहने दे!
मैं अहंकार की ऊँची चोटी पर अकेला बैठा हूँ, मेरे पाषाणमय
आसन को तोड़-फोड़ दे, धूलि में मिला दे,
मुझे निज चरणों में झुका ले!
कौन जाने इस निष्फल जीवन में मुझे किस बात पर गर्व है?
इस भरे घर में अकेला हूँ मैं!
तुम्हारे बिछोह में,
सारी दिनचर्या अथाह अंधकार में डूब गयी है!
संध्याकाल में मेरी पूजा विफल ना हो जाए,
इसीलिए प्रभु! अपने चरणों में झुका ले, झुका ले!

करूणा दीदी की डायरी से

हृदय सन्मुख है, तीर पर जा बैठी हूँ।
लहरियाँ उठती गिरती और प्रवाह में
लीन हो आगे बढ़ जाती हैं।
मुझसे छिप जाती हैं।
पर तभी सन्मुख
नई लहरें आ प्रगट हो
मुस्कानें लहरानें लगती हैं
और मैं जब उन में
रमने लगती हूँ वैसे ही
वे दुबक – घू ना जाने
कौन से मंतर से खिंची
किसके इशारे पर
किस की अनंत प्रेममयी गोद में जा छिपती हैं।
लीन हो जाती हैं। पुनरोदय की धैर्य पूर्वक इंतजार करते हुए।
-और लहरों का खेल चलता जाता है।
पर मैं तो वहाँ तीर पर सदा नहीं रह सकती ना!
सो जो है उसे समेट उठ खड़ी होती हूँ-
समय का पीछा करने के लिये!

कर्मफल

श्याम कुमारी

दक्षिण भारत का एक परिवार एक महान् धर्मगुरु का अनुयायी था। यह परिवार उन गुरु की साप्ताहिक गोष्ठी में सदैव भाग लेता था। इस परिवार के एक सदस्य को श्रीमाँ के ऊपर असीम श्रद्धा थी और कोई भी संकट आने पर वह श्रीमाँ का आशीर्वाद मंगवाता था। एक बार उसे ज्वर हो गया। उसने पांडिचेरी समाचार भेज कर आशीर्वाद पुष्प मंगवाया। ज्वर के कारण वह इन धर्मगुरु की साप्ताहिक गोष्ठी में नहीं जा सका। गुरु ने परिवार के सदस्यों से उसकी अनुपस्थिति का कारण पूछा। "उसे ज्वर है," यह सुन कर उन्होंने उसी समय ज्वरग्रस्त व्यक्ति पर अपनी चेतना को केंद्रित करके ध्यान किया। ध्यान करते ही ज्वरग्रस्त व्यक्ति का ज्वर उतर गया। अगले सप्ताह वह व्यक्ति पुनः उस गोष्ठी में अनुपस्थित था। गुरु ने फिर उसकी अनुपस्थिति का कारण पूछा। "उसे ज्वर है," यह सुन कर उन्होंने पूछा, "क्या वह दवा नहीं ले रहा है?" संबंधियों ने उत्तर दिया, "नहीं, उसने पांडिचेरी से श्रीमाँ का आशीर्वाद मंगाया है। वह कहता है मुझे दवा की आवश्यकता नहीं।" गुरु ने पुनः ध्यान किया और पुनः उसका ज्वर उतर गया किन्तु अगले सप्ताह संबंधियों ने सूचना दी कि उसका ज्वर बहुत अधिक बढ़ गया है। इस बार ये गुरु उसके घर पहुँचे। उसने गुरु से अनुरोध किया कि वे कुछ ना करें। श्रीमाँ के आशीर्वाद की शक्ति से वह ठीक हो जायेगा। किन्तु गुरु ने कुछ समय ध्यान किया और उसका ज्वर उतर गया।

अगले सप्ताह गोष्ठी में गुरु को सूचित किया गया कि उसे गबन के आरोप में जेल में बंद कर दिया गया है। अब ये गुरु हवालात पहुँचे। उस व्यक्ति ने कहा, "अब आप कुछ ना करें। मैंने आशीर्वाद पुष्प मंगा लिया है।" फिर भी इन गुरु ने आधा घंटे ध्यान किया और ध्यान के पश्चात् उस व्यक्ति से क्षमा माँगी। ध्यान में उन्हें ज्ञात हुआ कि इस व्यक्ति का कोई पूर्वजन्म का कर्मफल था जिसे श्रीमाँ एक साधारण ज्वर द्वारा शेष कर रही थीं। उनके बार-बार के हस्तक्षेप के कारण उसकी ज्वर से तो रक्षा होती गयी किन्तु अब कर्मफल का यह दुष्परिणाम सामने आया।

अचंचल रहो

श्रीमाँ

जब मैं किसी से कहती हूं, "अचंचल रहो" तो मतलब होता हैः कोशिश करो कि तुम्हारे अंदर विक्षुब्ध, उत्तेजित, अशांत विचार न हों; अपने मन को अचंचल बनाये रखने और अपनी समस्त कल्पनाओं, अवलोकनों तथा मानसिक रचनाओं को एक वृत्त में चक्कर काटते रहने से रोकने का प्रयास करो...। अब, हम तुरंत देखते हैं कि एक दूसरी अचंचलता भी है जो आवश्यक है, यहाँ तक कि उसकी बहुत अधिक आवश्यकता है- यह है प्राणिक अचंचलता यानी, कामना का अभाव। केवल प्राण जब पर्याप्त रूप से विकसित नहीं होता, तो जैसे ही उससे शांत-स्थिर रहने के लिये कहा जाता है तो वह या तो सोने चला जाता है या फिर हड़ताल कर बैठता है; वह कहता है-

"आह ! नहीं। यह सब नहीं! मैं अब और आगे नहीं बढ़ूँगा। मुझे जिस पोषण की आवश्यकता है, उत्तेजना, उत्साह, कामना, यहाँ तक कि आवेश आदि यदि तुम नहीं देते तो मैं हिलना-डुलना भी पसंद नहीं करता और अब मैं करूँगा भी नहीं।" तो यहाँ समस्या जरा ज्यादा नाजुक बन जाती है और संभवतः और भी अधिक कठिन; क्योंकि निस्संदेह, उत्तेजना में से तमस् में जा गिरना प्रगति से बहुत दूर है! मनुष्य को तमस् या निद्राजन्य निष्क्रियता को कभी अचंचलता समझने की भूल नहीं करनी चाहिये। अचंचलता बहुत भावात्मक स्थिति है; एक भावात्मक शांति है जो संघर्ष की विरोधी नहीं है-एक सक्रिय, संक्रामक, बलशाली शांति जो वश में करती और शांत करती है, जो प्रत्येक वस्तु को यथास्थान रखती, व्यवस्थित करती है... सच्ची अचंचलता बहुत महान् शक्ति है, बहुत महान् बल है... और यह बात भौतिक क्षेत्र तक में सच है तुम्हे बाहरी परिस्थितियों में अचंचलता को नहीं खोजना चाहिये, उसे अपने अंदर से ढूँढना चाहिये। सत्ता की गहराई में वह समग्र सत्ता में एक शांति है जो-अगर हम उसे अवसर दें तो-शरीर तक में वह समग्र सत्ता में अचंचलता उतार लाती है।

सावित्री पर श्रीमाँ की वार्ता

एक संकलन

श्रीमाँ - क्या तुम सावित्री पढ़ते हो?

शिष्य - हाँ माता-जी, हाँ।

श्रीमाँ - क्या तुमने पूरी कविता पढ़ी है।

शिष्य –हाँ माता जी मैंने दो बार पढ़ी है।

श्रीमाँ - जो तुमने पढ़ा, क्या उसे समझ गये हो?

शिष्य - अधिक नहीं, लेकिन मैं कविता पसन्द करता हूँ इसलिए इसे पढ़ता हूँ।

श्रीमाँ - यह कोई बात नहीं यदि तुम 'सावित्री' नहीं समझ पाते , इसे हमेशा पढ़ो।

तुम देखोगे कि हर बार जब तुम इसे पढ़ते हो कुछ नया अनुभव होगा। चीजें जो यहाँ नहीं थीं जो तुम नहीं समझ पाते थे ऊपर उठ आती हैं और अचानक स्पष्ट हो जाती हैं। सदा ही 'सावित्री' की पंक्तियों और शब्दों से एक आशातीत अन्तर्दृष्टि आती है। हर बार जब तुम पढ़ने और समझने की कोशिश करते हो, तुम देखोगे कि कुछ जो पीछे छिपा हुआ था उद्घाटित हो जाता है, -स्पष्ट और जीवन्त! मैं तुमसे कहती हूँ वही पंक्ति जो तुम एक बार पढ़ चुके हो हर बार जब उसे तुम फिर से पढ़ते हो एक भिन्न प्रकाश में तुम्हारे सामने प्रकट होगा। यह है जो निरपवादरूप में घटित होता है। हमेशा तुम्हारी अनुभूति वार्धित होती है। प्रत्येक पग पर यह उद्घाटित होता है। परन्तु यह जरूरी है कि इसे इस तरह मत पढ़ो जैसे कि तुम अन्य पुस्तकें या समाचार पत्र पढ़ते हो। जरूरी है कि एक खुले मस्तिष्क, बिना किसी अन्य विचार के रिक्त और नीरव मन से पढ़ो। अवश्य ही तुम अधिक एकाग्र रिक्त शांत और खुले रहो तब बिना तुम्हारे प्रयास के शब्द, लय, स्पंदन, सीधे इन श्वेत पन्नों पर प्रवेश करेगें बिना तुम्हारी किसी कोशिश के मस्तिष्क पर अपनी सील-मुहर लगा देंगे और स्वयं ही अपनी व्याख्या करेंगे। सावित्री अकेली तुम्हें उच्चतम शिखर पर चढ़ाने के लिए पर्याप्त है। अगर कोई सही रूप से जानता है कि सावित्री पर ध्यान कैसे किया जाये तो वह सारी सहायता जो उसके लिए जरूरी है प्राप्त कर लेगा। जो इस पथ पर चलने का इच्छुक है उसके लिए जरूरी है उसके लिए यह एक ठोस सहायता है जैसे कि 'प्रभु' स्वयं हाथ पकड़ कर तुम्हें निर्धारित लक्ष्य पर लिए जा रहे हों। और तब प्रत्येक प्रश्न वह कितना भी वैयक्तिक हो यहाँ उसका उत्तर है प्रत्येक कठिनाई का समाधान यहाँ उसके अंदर है बेशक वहाँ योग करना जरूरी है। सारे विश्व को उन्होंने एक अकेली पुस्तक के अंदर भर दिया है। यह अद्भुत कार्य है एक भव्य और अनूठा पूर्णत्व। तुम जानते हो श्री अरविन्द ने सावित्री लिखने से पूर्व मुझे कहा "मैं एक नवीन साहसपूर्ण कार्य आरंभ

करने के लिए प्रेरित हुआ। शुरु में मैंने संकोच किया लेकिन मैंने निश्चय कर लिया। अब भी मैं नहीं जानता किस हद तक मैं सफल हो जाऊँगा। मैं सहायता के लिए प्रार्थना करता हूँ। और तुम जानते हो यह क्या था? मैं पहले ही तुम्हें सावधान करती हूँ यह था उनका बोलने का तरीका विनम्रता से इतना पूर्ण और दिव्य शालीनता। वह कभी भी अपनी अपनी बात पर दबाव डालते हुए नहीं बोलते थे। जिस दिन उन्होंने वास्तव में शुरू किया उन्होंने मुझसे कहा "मैंने अपने आपको एक व्यापक अनंतता के अंदर बिना पतवार की नाव पर छोड़ दिया है। और एक बार शुरू करने के बाद पन्ने पर पन्ने बिना किसी व्यवधान के लिखा जैसे कि एक चीज वहाँ पूर्णतः तैयार हो और उन्हें यहाँ केवल स्याही में पन्नों पर अंकित करना हो।

वास्तव में पूरी सावित्री सर्वोच्च स्तर से पूरी की पूरी उतरी थी और श्री अरविन्द ने अपनी असाधारण प्रतिभा से एक उत्कृष्ट और भव्य शैली में पंक्तियों को केवल व्यवस्थित कर दिया था। कभी-कभी पूरी पंक्ति प्रकट हुई थी और उन्होंने उसे वैसा ही रहने दिया इसलिए कि सर्वोच्च संभव शिखर से प्रेरणा आ सके। उन्होंने अनथक कठोर श्रम किया। और क्या ही अद्भुत उनकी कृति है! हाँ यह वास्तविक सच्ची कृति है। यह एक अतुलनीय कृति है। वहाँ सबकुछ है और इतने सहज और स्पष्ट रुप में रखी गई है, पद्यांश पूर्वतः सांमजस्यपूर्ण शाश्वत सत्य को पूर्णतः आत्मसात करते हुए। मेरे बच्चे मैंने कितनी ही चीजे पढ़ी हैं सर्वश्रेष्ठ ग्रीक कृतियाँ, लैटिन, अंग्रेजी और बेशक फ्रांसीसी साहित्य जर्मन में भी और पश्चिम और पूर्व की सभी महान कृतियाँ महाकाव्यों सहित परन्तु मैं इसे दुहराती हूँ सावित्री की तुलना में कहीं भी कोई चीज मुझे नहीं मिली। कुछ विरल अपवादों को छोड़कर सभी साहित्यक कृतियाँ मुझे सारहीन, फीकी, खोखली, गहन सत्य से रहित लगीं और ये भी सावित्री के केवल अंशमात्र का प्रतिनिधित्व करती हैं। कितना भव्य कितना बाहुल्य यथार्थ कुछ अमृत्यम और शाश्वत उन्होंने रचा है। मैं एक बार पुनः कहती हूँ इस विश्व में सावित्री की तरह कोई चीज नहीं है। सावित्री के सत्य के अन्तरदर्शन को यदि कोई किनारे कर अलग रख दे जो कि प्रेरणा का हृदय उसका आवश्यक सार तत्व है और केवल पद्य पर ही विचार करता है वह उसे शास्त्रीय रूप में अपने आप में अनूठा पाता है। उन्होंने जो सृजन किया है वह कुछ है जिसकी मनुष्य कल्पना नहीं कर सकता। कारण सबकुछ वहाँ है हर चीज!

भागवत युद्ध

सुरेन्द्रनाथ जौहर

जब मैं श्रीअरविन्द आश्रम की दिल्ली शाखा के इतिहास के सम्बंध में पीछे मुड़कर देखता हूँ तो मैं इस नतीजे पर पहुँचता हूँ कि जो आश्रम इस स्थान पर स्थापित हुआ है वह अवश्य ही किसी ऐसे बहुत लम्बे युद्ध का परिणाम और फल है जो कहीं ऊपर आध्यत्मिक स्तर पर लड़ा जा रहा था । इसकी सारी कहानी इतनी मोहक व आकर्षक है जिस पर सहसा विश्वास करना कठिन है। ऐसा लगता है कि यह पुराणों के किन्हीं पृष्ठों से ली गई हो, परन्तु है तो एकदम असली और सच्ची। यदि इसका साक्षी मैं स्वयं ही नहीं होता तो इसका विवरण जानने पर मुझे भी ऐसा ही लगता कि यह तो एक ऐसी कहानी है जैसी कहानियों का वर्णन हमारे पुराणों में किया गया है और जिन्हें इस तर्क के युग में मनुष्य कल्पित या मनगढ़ण्त समझते हैं।

ऐसा समझिये कि पहले यहाँ पर आश्रम बनाने का कोई विचार, ख्याल अथवा स्वप्न भी नहीं था। किसी तरह का सुझाव, कोई नक्शा, खाका, ढाँचा और योजना तो कभी थी ही नहीं। फिर भी जब मैं इस भू-सम्पत्ति के बारे में, जोकि अब आश्रम के पास आ गई है, विचार करता हूँ तो इससे बहुत साफ जाहिर होता है कि यह भी किसी बड़े और लम्बे अभियान की पराकाष्ठा है जिसकी भगवान् के दरबार में कल्पना हुई, योजना बनी, उसका निश्चय किया गया व निर्णय लिया गया।

ऐसा प्रतीत होता है कि सब देवताओं ने चाहा कि इस भूमि को इसकी अन्तर्निहित पवित्रता व पुनीतता प्रदान की जाय और यह प्रतिष्ठा की पात्र बने। इस भूमि के आस-पास, जहाँ महलों के खण्डहर और भग्नावशेष, किले, मस्जिद और मन्दिर थे, आसुरिक शक्तियों को अवसर मिला और उन्होंने ऐसे वीरान और उजाड़ स्थानों पर अपना कब्जा जमा लिया। परन्तु देवताओं को भी यह स्थान अच्छा लगा और आकर्षण हुआ क्योंकि भगवान ने इस स्थान को अपने युग-परिवर्तनकारी कार्य के लिए पहले से ही नियोजित कर रखा था और अपने भविष्य के कार्य की महती योजना के लिए इसे चुनकर रखा था। इसलिए यह स्थान झगड़े का कारण बन गया और फलस्वरूप दैवी व आसुरिक शक्तियों के बीच घमासान युद्ध इसी स्थल पर छिड़ गया।

इस युद्ध के बीच सन् 1939-40 में यह भू-सम्पत्ति ख़रीद ली गई और आसुरिक

शक्तियों ने यह स्पष्ट और साफ रूप से देखा कि दैवी शक्तियों ने उनके विरुद्ध अपना एक कदम आगे बढ़ा लिया है। यह देखकर आसुरिक शक्तियों ने दैवी शक्तियों के हरेक चरण पर अपनी विघ्न-बाधायें डालनी शुरू कर दीं तीन बार तो यह भू-खण्ड कुछ कानूनी अड़चनों के कारण हाथ से निकल गया। अब इस स्थान में भवन-निर्माण समबन्धी जो कार्य हो चुका था उसे आर्किटेक्ट और इंजीनियरों ने आकर देखा और उन्होंने अपनी राय दी जिससे कि इस भवन का निर्माण कार्य प्रारम्भ हुआ। इस नये निर्माण में अभी थोड़ी ही प्रगति हुई थी कि सरकार की तरफ से तरह-तरह की नई समस्यायें- इसकी रूप-रेखा व धन-सम्बन्धी खड़ी हो गईं। काम में देरी पर देरी होने लगी जिसके परिणामस्वरूप मन में निराषा घर करने लगी।

फिर भी अनेक कठिनाइयों के बावजूद समय पाकर भवन के निर्माण का कार्य पूरा हो गया और यह प्रयास चलने लगा कि इस स्थान को सामाजिक, राजनैतिक और अन्त में लोककल्याण कार्य के लिए प्रयुक्त किया जाय। परन्तु ये धरणायें भी व्यर्थ सिद्ध हुईं और फिर से ये प्रयत्न प्रारम्भ हुए कि इस भवन तथा इसके साथ लगी हुई जो ज़मीन थी उसमें नर्सिग-होम सहित एक बड़ा अस्पताल, कृषि-फार्म, छात्रालय, हवाई-जहाज़ चलाने वालों के लिए एक विश्राम-गृह और अमेरिकी सैनिकों के लिए कुछ लम्बी-लम्बी बैरकें बनाई जायें। चूँकि उन दिनों द्वितीय विश्व-महायुद्ध चल रहा था इसलिए ये सब चीजें आवश्यक प्रतीत हुईं। परन्तु अन्त में ये सब धारणायें और योजनायें भी विफल हो गईं। और अब सन् 1947 में पाकिस्तान से आये हुए शरणार्थियों की समस्या आ खड़ी हुई। यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि लाखों निराश्रित लोगों को रहने का स्थान कहाँ और कैसे दिया जाय? शरणार्थीं लोग सारी पुरानी छोटी-मोटी इमारतों के खण्डहरों मै, टूटे-फूटे हुए पुराने मकानों, स्थानों और यहाँ तक कि सड़कों के किनारों पर भी टिक गये थे, परन्तु इस भवन में कोई नहीं आया।

इस भूमि में दो सौ फीट गहरा एक ट्यूब-वेल खोदा गया लेकिन जब उसमें नीचे से अच्छे पानी का कोई आसार ही नज़र नहीं आया तब उसे भी छोड़ देना पडा। यह ज़मीन इतनी बंजर थी कि कोई फूल-फल, वृक्ष उगना तो दूर रहा, घास का एक तिनका भी यहाँ मानों सहन नहीं होता था। मनुष्य जाति तो एक तरफ, जानवरों तक को भी यहाँ रखना मुश्किल काम था। परन्तु फिर भी कुछ ही सालों के अर्से में चेष्टायें की गयीं और प्रारम्भ में कुछ गायें यहाँ रखी गयीं। जब ये गायें और इनके बछड़े मिलाकर अठारह के करीब हो गये थे तभी डाकू इन्हें उड़ा ले गये। सब लोगों

की वर्षों की सामूहिक मेहनत, प्रयास और आगे की योजनायें सब खड्ड में पड़ गईं और बेकार हो गयीं।

इम तरह यह स्थान बहुत साल तक उजड़ा हुआ और वीरान पड़ा रहा। अन्धकार, टूटी-फूटी कब्रों और खण्डहरों से घिरे हुए इस बियाबान स्थान ने एक भयावनी जगह का रूप धारण कर लिया। डरावने जंगली जीव-जन्तुओं के जमाव का यह डेरा बन गया। भ्रष्ट और भयानक प्राणियों के लिए अन्धेरे और वीराने में यह खाने-पीने का मानो एक सैरगाह बन गया। चोर-डाकुओं के छिपने के लिए अड्डा हो गया और बड़े-बड़े चूहों, चमगादड़ और उल्लुओं ने भी इसे अपना बसेरा बना लिया। हर प्रकार के साँपों ने रहने के लिए बिल बना लिये और गीदड़ भी अपनी हुओं-हुओं की बोली से दिन-रात धरती-आकाश गुँजाने लगे। यह सब आसुरिक शक्तियों को तो बहुत अच्छा लगा और उन्होंने सोचा कि चलो अब यह स्थान भगवान् के काम के तो योग्य ही नहीं रहा। इस प्रकार यह स्थान आसुरिक शक्तियों का एक सुदृढ़ गढ़ बनता गया जो भागवत-कार्य के ऊपर हमला बोलने के लिए हमेशा उद्यत और तत्पर रहती थीं।

इसी समय कुछ ऐसी घटनाएँ घटीं तो तर्क से समझाई नहीं जा सकतीं। एक ऐसे व्यक्ति, जिनका मेरे साथ 1942 की क्रान्ति-'भारत छोड़ो' आन्दोलन के समय जेल में वास्ता पड़ा था परन्तु उसके पश्चात् उनका कुछ पता नहीं चला, एक दिन अचानक मेरे घर सन् 1955 में आ पहुँचे। मैं उस समय 27 औरंगजेब रोड पर रहता था। अजीब बात यह थी कि जब मेरी जान-पहचान इन सज्जन से पहले जेल में हुई थी तो पुलिस यह कभी पता नहीं लगा पाई कि वह हैं कौन? क्या उनका नाम है तथा उनके बाप का क्या नाम है और क्या उनका पता है? इस कारण पुलिस कभी उनके विरुद्ध कोई मुकद्दमा भी ना बना सकी। बातचीत करने और देखने से तो वह बिल्कुल सनकी, झक्की और ख़ब्ती मालूम होते थे। कहने लगे कि- "मैं भगवान् का दूत हूँ।" मैंने उनका अता-पता जानने की बहुत कोशिश की परन्तु कभी कुछ पता नहीं लगा। तो भी एक दिन वे कहने लगे कि-"मैं इस समय एक विशेष लक्ष्य को लेकर आया हूँ और वह यह है कि आपका जो एक भवन कुतुब के रास्ते में है और जिसमें आसुरिक शक्तियों ने अपना डेरा जमाया हुआ है और अपना कब्जा किया हुआ है उस पवन में से मुझे उन आसुरिक शक्तियों को निकाल बाहर करना है।" मैं उनकी बातों को सुनकर बड़ा हैरान हुआ। परन्तु वे शख्स तो शाम को अपने लक्ष्य पर चले ही गये। मैं तो यह कभी सोच भी नहीं सकता था ना आशा करता था और ना ही मान सकता था।

दूसरे दिन प्रातः वे मेरे घर पर आ पहुँचे। उनका हाल बुरा था। फटे हुए कपड़े, सिर के

बाल और दाढ़ी ऐसी बिखरी हुई जैसे कि बुरी तरह से पिटे हुए हों। आते ही कहने लगे- "आसुरिक शक्तियों की ताकत बहुत अधिक थी जिसका मुझे अन्दाज़ भी नहीं था। इस कारण भयंकर युद्ध करना पड़ा। परन्तु मैं उन्हें मारकर छोड़ूँगा। हाँ! उनको जरूर हराकर छोड़ूँगा"। ऐसा निश्चयपूर्वक कहते हुए वे चले गये।

अगले दिन प्रातः जब वे फिर मेरे घर आये तो इस बार उनकी हालत इतनी अधिक खराब थी- इतनी खस्ता थी और हाल इतना बेहाल था कि वे बिल्कुल टूटे हुए, चूर-चूर व क्षत्-विक्षत् अवस्था में थे। इसके विपरीत उनकी आँखों में थी विजय की एक चमक और वे उसी अद्भुत चमक से जगमगा रही थीं। भाव-भरे स्वर में वे बोले-"आसुरिक शक्तियों ने डटकर मुकाबला किया और आखिरी दम तक हमारी घमासान लड़ाई चलती रही, परन्तु अब उनका समय खत्म हो चुका है और मैंने उन्हें पूरी तरह से निकाल बाहर फेंका है। अब यह भवन हमेशा के लिए भगवान के अवतरण के लिए खाली है।"

अगली बार जब मैं पाडिचेरी आश्रम पहुँचा तो मैंने माताजी से प्रार्थना की कि आश्रम उदघाटन के लिए कोई तिथि निश्चित कर दें।

माताजी ने तुरन्त 12 फरवरी 1956 निश्चित कर दिया। मैंने कहा-"माताजी 21 फरवरी क्यों नहीं, जोकि बहुत महत्त्वपूर्ण है और आपका पवित्र जन्मदिन है।"

माताजी ने कहा-"12 और 21 एक ही बात है, इसमें कोई अन्तर नहीं है।" माताजी ने आगे कहा-"बारह लोग उस दिन ध्यान में बैठ सकते है। एक पुराना विश्वास है कि यदि बारह लोग इकठ्ठे होकर प्रार्थना करें तो वह प्रार्थना मंजूर होती है।

तो इस प्रकार दिल्ली आश्रम की प्रतिस्थापना हुई।

ज्यों ही यह रहस्यमयी विजय प्राप्त हुई कि दिल्ली पुलिस वालों का टेलीफोन आया कि वह हमारे भवन के चारों तरफ के क्षेत्र की पूरी छानबीन करना चाहते हैं और इस भवन में अपना शिविर गाड़ना चाहते हैं। मैंने हाँ कर दी और उसी समय पुलिस का एक दल बन्दूक और संगीनों से लैस होकर भवन की दूसरी मंजिल में आकर जम गया। इससे भगवान् के दूत ने जो संग्राम किया था और आसुरिक शक्तियों को निकालने के लिए हमला किया था उसकी पुष्टि हो गई।

यह सब क्यों हुआ और कैसे हुआ इसके लिए तो मैं खुद हैरान हूँ परन्तु कुछ समय पश्चात् मैं अपने अन्दर यह सोचने लग गया कि इस स्थान का कुछ उपयोग होना चाहिये। अन्त में एक ऐसा क्षण भी आ गया जबकि इस स्थान पर रूपान्तर करने का काम भी हाथ में ले लिया गया। बहुत

ही जल्दी मरम्मत का काम शुरू किया गया, सारे भवन की सफाई की गई और सुन्दर पुताई हुई। इसके बाद ध्यान में कुछ ऐसे विचार बने कि इसके साथ कुछ नई इमारतें भी खड़ी की जायें।

अब काम चल पड़ा। मुझे हिम्मत हुई कि इस स्थान में खेलने के लिए बड़े-बड़े मैदान, विद्यालय और छात्रावास इत्यादि बनाये जायें। मैंने माताजी को लिखा। इन सब योजनाओं में जोकि माताजी को मैं भेज रहा था उनमें सबसे ऊपर मेरे मन में एक ऐसा विचार आता था कि यहाँ पर श्रीआविन्द की कोई यादगार बननी चाहिये परन्तु उसका कोई आकार मैं नहीं बना पा रहा था। माताजी की तरफ से मेरे सुझावों पर कभी कोई उत्तर नहीं मिला। अन्त में एक ऐसा ऐतिहासिक दिवस भी आया जबकि मैंने माताजी से पूछा-"माताजी, दिल्ली के स्थान के सम्बध में मैं समय समय पर अपने सुझाव भेजता रहा हूँ और कुछ-न-कुछ कहता भी रहा हूँ परन्तु मुझे कभी आपका कोई मार्गदर्शन और निर्देश प्राप्त नहीं हुआ।"

अब माताजी ने कुछ ऐसे सहज भाव से कहा जिसका गहरा प्रभाव मेरे मानस-पटल पर जन्म-जन्मान्तर पर्यन्त छाया रहेगा। माताजी ने कहा-"लेकिन क्यों! यह स्थान तो श्रीअरविन्द आश्रम होगा और अवश्य ही इस स्थान पर श्रीअरविन्द की समाधि बनेगी जिसके लिए मैंने श्रीअरविन्द के अमूल्य व कीमती अवशेष भी सँभालकर रखे हुए हैं।" साफ जाहिर है कि आसुरिक शक्तियों के निकल जाने के पश्चात् और इस स्थान को खाली कर देने के बाद देवी शक्तियों ने माताजी के ऊपर भी अपना प्रार्थना-प्रभाव डाला होगा कि इस स्थान को मुक्त व पवित्र करें। क्योंकि भगवान की यही इच्छा है और इस इच्छा को पूरी करने के लिए इतने लम्बे समय तक इतना भीषण युद्ध करना पड़ा है।

माताजी का यह गहरा और महत्त्वपूर्ण निश्चय सुनकर मैं काफी समय तक अचंभित और अभिभूत रहा। मन की इसी अद्भुत अवस्था में मैं दिल्ली लौट आया।

वाहा! क्या खुशी और हैरानगी की बात हुई कि जिस दिन मैं दिल्ली पहुँचा उसी दिन एक रजिस्ट्री-पैकेट पांडिच्चेरी से प्राप्त हुआ। मैंने पैकेट खोलकर देखा कि श्रीअरविन्द की समाधि के निर्माण के लिए पूरे रेखाचित्र, आदेश और निर्देश सब विधिवत् दिये हुए थे। अब मैं इस अदभुत घटना के ऊपर कह ही क्या सकता हूँ।

भला अब मेरे रास्ते में कौन-सी रुकावट थी!

समाधि का पूरा रेखाचित्र मिल गया था। मेरी पुकार सुन ली गई थी और स्वीकृति दे दी गई थी। अब तो कुछ ऐसा होना प्रारम्भ हुआ जोकि इसके पहले कभी संभव नहीं हो रहा था।

बीस साल की व्यर्थ कोशिश और निष्फल प्रयास अब जादू की छड़ी के छूने की तरह ठीक होने लगे। उस समय दिल्ली में बिजली की बहुत कमी थी और इस स्थान के पाँच-सात मील के अन्दर ना कहीं खम्बे थे और ना कोई बिजली की लाइन। परन्तु अब खास तौर पर वे हमारे लिए लगाए गये जिससे कि पम्प लगाकर कुँओं से पानी निकालना भी शुरू हुआ। ऐसे कुँए जो सैकड़ों वर्षों से वीरान पड़े हुए थे, और वे खेत जोकि वर्षों से उजाड़ खाली पड़े हुए थे-उन्हें अब इधर-उधर के लोग किराये पर लेने लगे और घास, खेती तथा सब्जी लगनी शुरू हो गई जिससे आश्रम के लिए कुछ आमदनी भी शुरू हुई।

चारों ओर से हर प्रकार की ऐसी मद्द आनी शुरू हो गई जिसका कभी स्वप्न में भी ख्याल नहीं हो सकता था।

हर एक कठिनाई और उलझन के लिए स्वतः ऐसी शक्तियाँ आ उपस्थित होने लगीं जिन्होंने खुशी और स्वेच्छा से सहायता देना प्रारम्भ कर दिया। एक उद्यान-विशेषज्ञ अपने-आप आये और उन्होंने बाग-बगीचे व वृक्ष लगाने और लॉन बनाने में मदद देनी शुरू कर दी। एक-दो आर्किटेक्ट और इंजीनियर भी आ गये जिन्होंने निर्माण-कार्य में अपना मूल्यवान समय देकर समय आने पर श्रीअरविन्द की संगमरमर की समाधि बनाने में अपना योगदान दिया। एक अन्य सैनिटरी-इंजीनियर ने आकर पाइप-लाइन डालने की समस्या को हल कर दिया। इस तरह बीसों लोग चारों ओर से छोटे-बड़े मुश्किल कामों और समस्याओं को हल करने के लिए व हाथ देने के लिए आ जुटे जिनका आश्रम से या मुझसे कोई सम्बन्ध ना था।

अब तो ऐसी बात हो गई कि जो सब मुश्किलें और उलझनें पड़ी रहती थीं और जिनका कोई हल नहीं मिलता था, व कोई बात आगे चल नहीं पाती थी अब वही सब बातें सीधी व सरलता से हल होने लगीं। सब काम सफल होने लगे। इस तरह थोड़े ही महीनों के भीतर विद्यालय की स्थापना भी हो गई।

23 अप्रैल, 1956 को जब आश्रम के विद्यालय की स्थापना की गई-वहाँ कुछ भी ना था। ना कोई विद्यार्थी, ना ही कोई अध्यापक। कोई साज़ो-सामान भी नहीं। यहाँ तक कि कोई योजना भी नहीं कि किस स्थान पर विद्यालय की कक्षाएँ होंगीं। तो भी 23 अप्रैल 1957 को- एक वर्ष के भीतर ही यह स्कूल दिल्ली के शिक्षा क्षेत्र में अपना एक विशिष्ट स्थान बना चुका था। दो सौ के लगभग उसमें छात्र थे और बीस से अधिक अध्यापक काम कर रहे थे।

श्रीअरविन्द के पवित्र देहावशेषों की आश्रम-समाधि में स्थापना करके भागवत अनुष्ठान स्वरूप दीर्घकाल से चले आ रहे देवासुर संग्राम में दैवी शक्तियों की विजय और आसुरी शक्तियों के सम्पूर्ण विघटन व

विनाश के लिए श्रीमाँ ने अपनी निर्णायक मुहर लगा दी व इस क्षेत्र को आसुरी प्रभाव से विमुक्त कर विजय-मंडल की सच्ची महिमा से मण्डित कर दिया। ऐसा लगता था कि यही भागवत प्रक्रिया की चरम परिणति थी और भारत की राजधानी में नवीन युग के उद्घाटन के प्रथम चरण की सम्पूर्ति, जिसके प्रादुर्भाव के हित देवताओं ने इतने दीर्घकाल तक दुर्धर संघर्ष किया व जिसमें साधकों का प्रयोग उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र व आयुधों के रूप में किया। यह कोई मात्र आकस्मिक घटना नहीं है बल्कि जीवन्त निरूपण है जिससे माताजी के ऐतिहासिक संदेश का सत्य स्पष्ट परिलक्षित होता है-

"अतिमानस का अवतरण हो चुका है आसुरी शक्तियाँ पछाड़ी जा चुकी हैं। वे पीछे हट रही हैं। मानवता का अतिमानस युग में प्रवेश हो गया है।"

यह स्थूल जगत ऐसी चीज़ों से भरा हुआ है जो तुम्हें अपनी आत्मा की खोज से अलग खींचती हैं, अपने घर पहुँचने से रोकती हैं। सामान्यतया अज्ञ प्रकृति की शक्तियाँ तुम्हें इधर-उधर उछालतीं-फेंकती हैं और तुम्हें निपट मूर्खता से भरी चीज़ें करने के लिए भी विवश करती हैं। बस, एक ही समाधान है- अपने चैत्य पुरुष को ढूँढ निकालना; और एक बार जब तुम उसे पा लेते हो तब सारी शक्ति लगाकर उसे पकड़े रखना और किसी भी प्रलोभन से, किसी भी प्रेरणा, चाहे वह कुछ भी क्यों ना हो, वहाँ से अलग ना होना।

श्रीमाँ

विचार और सूत्र

श्रीमाँ

- अपने अज्ञान में हम बच्चों के समान इसी बात पर फूल उठते हैं कि हम बिना किसी सहायता के सीधे चल रहे हैं, अपने इस उत्साह में अपने कंधे पर माँ के स्थिर स्पर्श का भाव ही नहीं होता। पर जब हम चलते हैं तो पीछे मुड़कर क्या देखते हैं कि यह तो भगवान् ही हमें हर समय आगे चला रहे थे और सहारा दिये हुए थे।

- पहले जब कभी मैं पाप के गर्त्त में गिरता था, मैं रोने लगता था, अपने और भगवान् के प्रति रोष से भर उठता था। बाद में यह प्रश्न करने की हिम्मत कर बैठा, "तुमने फिर से मुझे कीचड़ में क्यों डाल दिया, सखे?" पर यह भी अपने मन को धृष्ठता एवं अशिष्टता ही प्रतीत हुई। तब मैं एक ही काम कर सका, चुपचाप उठकर कनखियों से उसकी ओर देखकर अपनी सफाई में लग गया।

जब तक व्यक्ति को अपने गुणों का अभिमान रहता है सर्वोच्च प्रभु उसे पाप-गर्त में गिराते रहेंगे जिससे उसे विनम्रता की आवश्यकता अनुभव होने लगे।

- भगवान् ने जीवन की व्यवस्था ही इस प्रकार की है कि संसार आत्मा का पति बन गया है और कृष्ण उसके प्रेमी। हमें संसार को उसका सेवा-रूपी कर्ज़ चुकाना है। हम उससे एक विधान के द्वारा, एक विवश धारणा और सुखःदुख सामान्य अनुभूति द्वारा बँधे हैं, किंतु हमारे हृदय की भक्ति, हमारी शक्ति, हमारा गुह्य आनन्द, सब अपने प्रेमी के लिये है।

- भगवान् का आनंद गुह्य एवं आश्चर्यजनक है; वह एक रहस्य है, हर्षोन्माद है, जिसका सामान्य बुद्धि उपहास करती है, किंतु एक बार जब आत्मा उसका स्वाद चख लेती है तो वह उसे कभी नहीं छोड़ सकती, चाहे उसे संसार में इसके लिये कितना भी अपमान, कष्ट एवं यंत्रणा क्यों ना सहनी पड़े।

अभी तक तो संसार इस विशुद्ध, आलोकपूर्ण दिव्य आनंद का विरोध ही कर रहा प्रतीत होता है; किंतु एक दिन ऐसा आयेगा जब संसार भी इस दिव्य आनंद को अभिव्यक्त करेगा। इस कार्य के लिये उसे तैयार होना ही होगा।

- जगद्गुरु भगवान् तेरे मन से अधिक बुद्धि रखते हैं; उन पर भरोसा रख, उस स्वार्थमय, सदा के अभिमानी और संशयवादी मन पर नहीं।

- संशयवादी मन सदा ही शंका करता है, क्योंकि वह समझ नहीं सकता, किंतु भगवान् के प्रेमी का विश्वास सदा ही जानने की चेष्टा में रहता है, चाहे वह समझ ना भी सके। हमारे

अज्ञान के लिये दोनों की आवश्यकता है, पर इनमें से कौन-सा अधिक शक्तिशाली है इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता। जिस वस्तु को मैं आज नहीं समझ सकता वह किसी-ना-किसी दिन समझ में आयेगी ही, पर यदि मैं विश्वास और प्रेम ही खो बैठा तो मैं उस लक्ष्य से जिसे भगवान् ने मेरे सामने रखा है एकदम ही च्युत हो जाऊँगा।

-मैं अपने पथप्रदर्शक और शिक्षक भगवान् से पूछ सकता हूँ, "क्या मैं ठीक रास्ते पर हूँ या आपने अपने प्रेम और बुद्धिमत्ता के कारण मेरे मन को मुझे धोखा देने की अनुमति दे दी है?" तुम यदि चाहो तो अपने मन पर शंका कर सकते हो, पर इस बात पर शंका मत करो कि भगवान् ही तुम्हारा पथप्रदर्शन कर रहे हैं।

जीवन हमें इसलिये दिया गया है कि हम भगवान् को प्राप्त कर सकें और उनके साथ संयुक्त हो सकें। मन हमें फुसलाने की चेष्टा करता है कि ऐसा नहीं है, पर क्या हम इस झूठे मन का विश्वास करें?

-भगवान् प्रेमवश, शिशुवत् आत्मा और दुर्बल मनुष्य को शिक्षा देते हैं, उन्हें एक-एक पग करके आगे बढ़ाते हैं, पर अपने अंतिम अप्राप्त शिखरों को उनकी दृष्टि से ओझल ही रखते हैं। क्या हम सबमें ही कहीं-ना-कहीं दुर्बलता नहीं है? क्या उनकी दृष्टि में हम सब छोटे बच्चे नहीं हैं? मैंने यह देख लिया है कि जब भी किसी वस्तु को भगवान् ने हमसे दूर रखा है, ऐसा उन्होंने प्रेम और बुद्धिमत्तावश ही किया है। यदि उस समय वह मुझे प्राप्त हो जाती तो मैं उस महान् शुभ को भयानक विष में परिवर्तित कर देता। तो भी जब कभी हम आग्रह करते हैं, वे हमें विष भी दे देते हैं, जिससे कि हम उससे मुँह फेर लेना सीख सकें और उनके अमृतसर का आस्वादन ज्ञानपूर्वक कर सकें।

जब मनुष्य थोड़ा और बुद्धिमान हो जायगा तो वह किसी भी विषय में शिकायत नहीं करेगा और भगवान् द्वारा दी गयी वस्तुओं को उनकी कृपा के रूप में स्वीकार करेगा, ऐसी कृपा के रूप में जो अत्यधिक अनुग्रहपूर्ण है। जितना अधिक हम उनके प्रति समर्पित होंगे उतना अधिक हम उन्हें समझ सकेंगे। जितना अधिक हम उनके प्रति कृतज्ञ होंगे उतने अधिक हम प्रसन्न भी रहेंगे।

- अब तक तो ईश्वर में अनास्था रखने वाले को भी यह समझ सकना चाहिये कि सृष्टि एक ऐसे असीम और शक्तिशाली उद्देश्य की ओर बढ़ रही है जो कि विकासक्रम के मूल विचार में ही निहित है। किंतु इस असीम उद्देश्य और इसकी चरितार्थता के लिये एक ऐसी असीम बुद्धिमत्ता की भी आवश्यकता है जो वस्तुओं को तैयार करे, उनका पथप्रदर्शन करे, उन्हें आकार दे तथा उनकी रक्षा एवं उनका समर्थन करे। ऐसी बुद्धिमत्ता को सम्मान दो, मंदिर में धूपबत्ती जलाकर ना सही, अपनी आत्मा में

विचारों से उसकी पूजा करो, उस असीम प्रेम के सारतत्व तथा असीम आत्मतेज के विचार को अस्वीकार करते हुए भी। तब, ना जानते हुए भी, तुम कृष्ण को ही सम्मान दे रहे होते हो, उसी की पूजा कर रहे होते हो।

यह वस्तु शब्दों और विचारों से परे की है। भगवान् की सर्वोच्च उपस्थिति हमें अनुभव करनी ही पड़ती है, वह हमें आश्चर्यचकित होने और प्रशंसा भाव लाने के लिये विवश कर देती है।

हमें उन सब मानसिक धारणाओं से पृथक् रहना चाहिये जो वस्तुओं को सीमित एवं विकृत कर देती हैं। हमें संपर्क को शुद्ध रखने के लिये प्रयत्न करना होगा।

- प्रेम के देवता ने कहा है, "जो अज्ञात एवं अवर्णनीय सत्ता की खोज करते हैं, वे मेरी ही खोज कर रहे होते हैं और मैं भी उन्हें स्वीकार करता हूँ।" उन्होंने अपने शब्दों से मायावादी और नास्तिक दोनों को निर्दोष ठहराया है। हे भक्तवर, तुम उसे, जिसे तुम्हारे स्वामी ने स्वीकार कर लिया है, क्यों बुरा-भला कहते हो?

भागवत् दृष्टि में सभी सच्ची मानवीय अभीप्साएँ स्वीकार करने योग्य हैं, चाहे उनके स्वरूपों में कितनी भी विषमताएँ या प्रत्यक्ष असंगतियाँ क्यों ना हों।

और ये सब मिलकर भी भागवत सत्ता को अभिव्यक्त करने के लिये काफी नहीं है।

- संसार कब स्वर्ग के प्रतिरूप में बदलेगा?

जब कभी मनुष्य भगवान् के साथ खेलने वाले लड़के और लड़कियाँ बन जायेंगे और भगवान् कृष्ण और काली के रूप में प्रकट होंगे, कृष्ण होगा समूह का सबसे अधिक प्रसन्न लड़का और काली होगी सर्वाधिक शक्तिसंपन्न लड़की, जो स्वर्ग के उद्यान में मिलकर खेलेंगे। ईडन का उद्यान भी ठीक था पर आदम और ईव काफी बड़ी आयु के थे और उनका भगवान् भी आयु में बड़ा था, बल्कि इतना कठोर और गंभीर था कि सर्पद्वारा दी गयी भेंट का प्रतिरोध भी नहीं किया जा सका।

- जो भगवान् मुस्करा नहीं सकता, वह इस विनोदपूर्ण जगत् को सृष्ट ही नहीं कर सकता था।

मिथ्यात्व की शक्तियों के विरूद्ध व्यंग का शस्त्र ही अत्यधिक बलशाली प्रमाणित होता है। एक वाक्य से ही श्री अरविन्द मनुष्य-निर्मित देवता की शक्ति को नष्ट कर देते हैं।

- भगवान् ने बच्चे को प्यार करने के लिये उसे अपने आनंदी हृदय के पास बुला लिया, किंतु माँ रो उठी, उसे सांत्वना देना कठिन हो गया, क्योंकि उसका बच्चा अब नहीं रहा।

- जब मुझे कोई कष्ट या पीड़ा होती है, या मेरे साथ कोई दुर्घटना घटित होती है तो मैं कहता हूँ, "हाँ तो मित्र, तुमने फिर मुझे तंग करना शुरू कर दिया", और मैं पीड़ा का, कष्ट का आनन्द उठाने तथा दुर्घटना के सौभाग्य का उपभोग करने बैठ जाता हूँ; तब वह देख

लेता है कि मैं उसकी चालाकी समझ गया हूँ और वह अपने भूतों-प्रेतों को मुझसे दूर हटा लेता है।

श्री अरविन्द कितनी सुन्दरता से हँसी-हँसी में हमें साधारण मानवी चेतना की असत्यता को समझाने का प्रयत्न करते हैं, साथ ही भागवत चेतना के उस आलोकपूर्ण एवं सर्वशक्तमान् आनंद की जिसे हमें प्राप्त करना है।

-मेरे प्रेमी ने मेरा पापरूप वस्त्र छीन लिया और मैंने भी प्रसन्न भाव में उसका त्याग कर दिया; तब उसने मेरे पुण्यरूपी वस्त्र की ओर हाथ बढ़ाया, पर मैंने लज्जा और भय से अभिभूत होकर उसका प्रतिवाद किया। किंतु जब उसने बलपूर्वक मुझसे वह ले ही लिया तो मैंने देखा कि किस प्रकार मेरी आत्मा अब तक मुझसे छुपी पड़ी थी। माताजी कहती हैं : जब हम अपने पुण्यरूपी वस्त्र का भी त्याग कर देंगे, तभी हम 'सत्य' के लिये तैयार होंगे। -पाप कृष्ण की, पुण्यात्मा की दृष्टि से अपने-आपको छिपाने के लिये, एक चाल है, स्वांग है। ओ 'फारिसी', पापी में भी भगवान् को देख, अपने हृदय को पवित्र कर और अपने भाई को हृदय से लगा ले। सदा की भाँति यहाँ भी श्री अरविन्द अपने विशिष्ट विनोदपूर्ण ढंग से हमें बताते हैं कि भागवत सत्य पाप और पुण्य दोनों से ऊपर है।

स्वयं को दुःखित एवं निरुत्साहित मत होने दो। मनुष्यों में दुर्भाग्यवश दूसरों को प्रति निदर्य होने की आदत होती है। परन्तु यदि तुम अपना कार्य पूरी संजीदगी से करो तो श्रीमाँ संतुष्ट होंगी और शेष सब बाद में आ जाएगा।

श्री अरविंद

भय से मुक्ति-विधियाँ

श्रीमाँ के वचन

भय एक अपवित्रता है

भय एक अपवित्रता है, सबसे बड़ी अपवित्रताओं में से एक है, उनमें से एक जो उन भगवद्-विरोधी शक्तियों के अत्यंत प्रत्यक्ष परिणाम होती हैं जो पृथ्वी पर भागवत कार्य को नष्ट कर देना चाहती हैं; और जो लोग सचमुच योग करना चाहते हैं उनका सबसे पहले कर्तव्य है, अपनी सारी शक्ति, सारी सच्चाई तथा जितनी सहिष्णुता वे धारण कर सकें उस सबके साथ अपनी चेतना में से भय की छाया तक को निकाल फेंकना। मार्ग पर चलने के लिए हमें निर्भय होना होगा और कभी उस क्षुद्र, तुच्छ, दुर्बल, निकृष्ट, अपनी ही ओर पीठ फेर लेने के भाव को, जो कि भय है, प्रश्रय नहीं देना चाहिये।

एक अदम्य साहस, एक पूर्ण निष्ठा और एक आत्मदान जो इतना सच्चा हो कि मनुष्य ना तो हिसाब लगाये ना मोल-तोल करे, पाने की भावना से ना दे, संरक्षण पाने की भावना से निर्भरशील ना हो- ऐसी श्रद्धा ना रखे जो प्रमाण माँगती हो- बस, यही चीज पथ पर चलने के लिये अनिवार्य है, और बस यही चीज है जो वास्तव में तुम्हें सभी खतरों में सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

भयः विश्वास का अभाव-

मनुष्य भयभीत क्यों होता है?

मैं समझती हूं कि इसका कारण यह है कि मनुष्य अहंवादी होता है।

इसके तीन कारण हैं। पहला, अपनी सुरक्षा के लिये मनुष्य अत्यधिक चिंतित होता है। दूसरा, मनुष्य जो कुछ नहीं जानता वह उसे सर्वदा एक प्रकार की बेचैनी का बोध प्रदान करता है और वह चीज़ उसकी चेतना में भय का रूप ले लेती है। और सबसे अधिक, मनुष्य के अंदर भगवान् के प्रति विश्वास बनाये रखने का अभ्यास नहीं होता। यदि तुम विषय की काफ़ी गहराई में जाओ तो देखोगे कि वास्तव में यही सच्चा कारण है। ऐसे लोग हैं जो यह भी नहीं जानते कि भगवान् हैं, परंतु हम उन्हें दूसरे शब्दों में कह सकते हैं, "तुम्हें अपनी भवितव्यता में कोई विश्वास नहीं है" अथवा, "तुम भागवत् कृपा के बारे में कुछ नहीं जानते"- तुम किसी भी चीज़ को जैसे चाहो रख सकते हो, परंतु विषय की जड़ है श्रद्धा-विश्वास का अभाव। यदि किसी व्यक्ति को सर्वदा यह बोध बना रहे कि सभी परिस्थितियों में जो कुछ घटित होता है बस वही सर्वोत्तम होता है तो वह कभी भयभीत नहीं होगा।

भय पर विजय पाना-

भय पर विजय पाने का सबसे बड़ा उपाय है भय को पैदा करने वाली वस्तु का साहसपूर्वक सामना करना। तुम जिस संकट से डरते हो तुम्हें उसी के सामने रख दिया जाता है और तुम फिर उससे नहीं डरते। भय विलीन हो जाता है। यौगिक दृष्टिकोण से, अनुशासन की दृष्टि से, यही इसका इलाज सुझाया जाता है। प्राचीन दीक्षाओं में, विशेषता मिस्त्र में, गुह्यविद्या का अभ्यास करने के लिये, जैसा कि मैं तुम्हें पिछली बार बता रही थी, मृत्यु के भय को पूरी तरह से दूर करना आवश्यक होता था। हाँ, तो उन दिनों वहाँ परंपरा यह थी कि नये शिष्य को पत्थर की बनी कब्र में लिटा दिया जाता था, और कुछ दिनों के लिये उसे वहीं छोड़ दिया जाता था, मानों वह मर गया हो। स्वभावतया, वे उसे मरने के लिये नहीं छोड़ देते थे, ना ही उसे भूखा-प्यासा रखा जाता था, उसका वहाँ दम भी नहीं घुटता था, किंतु फिर भी वह वहाँ मृत के समान पड़ा रहता था। ऐसा प्रतीत होता है कि इससे उसका डर चला जाता था।

जब भय आये तो यदि व्यक्ति उसी समय उस पर चेतना, ज्ञान, शक्ति एवं प्रकाश उंडेल सके तो व्यक्ति उसे पूरी तरह से दूर कर सकता है।

जब डर लगे तो व्यक्ति को क्या करना चाहिये?

यह इसपर निर्भर है कि तुम कौन हो? डर दूर करने के कई तरीके हैं।

अगर तुम्हारा अपने चैत्य पुरूष से कुछ संबंध है, तो तुरंत उसे बुला लो और चैत्य प्रकाश में चीजों को वापिस, व्यवस्था में रख दो। यह सबसे सशक्त उपाय है।

जब यह चैत्य संपर्क ना हो, फिर भी सत्ता समझदार हो, यानि, उसका विवेकशील मन स्वतंत्र रूप से गति करता हो तो व्यक्ति उसका उपयोग तर्क के लिए कर सकता है, अपने-आपसे इस तरह बातचीत कर सकता है जैसे किसी बच्चे से कर रहा हो, उसे यह समझाये कि डर अपने-आपमें बुरी चीज़ है और अगर संकट है भी तो भय के साथ संकट का सामना करना सबसे बड़ी मूर्खता है। अगर सचमुच संकट है तो केवल साहस की शक्ति के द्वारा ही उसमें से बाहर निकलने का अवसर मिल सकता है; अगर तुम्हारे अंदर जरा भी भय है, तो बस तुम खतम समझो। तो इस प्रकार के तर्क से डरने वाले भाग को समझाओ कि वह डरना बंद कर दे।

अगर तुम्हारे अंदर श्रद्धा है और तुम भगवान् के प्रति निवेदित हो तो एक बहुत सरल-सा उपाय है। वह यह है, यूँ कहोः "तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो। मुझे कोई चीज नहीं डरा सकती क्योंकि तुम ही मेरे जीवन को रास्ता दिखा रहे हो। मैं तुम्हारा हूँ और तुम ही मेरे जीवन का मार्ग-दर्शन कर रहे हो।"

यह बात तुरंत क्रिया करती है। सभी उपायों में यह उपाय सबसे बढ़कर प्रभावशाली है यानि व्यक्ति को सचमुच भगवान् के प्रति निवेदित होना चाहिये। यह हो तो तुरंत क्रिया होती है। सारा भय सपने की तरह तुरंत गायब हो जाता है और सपने के साथ-ही-साथ बुरा प्रभाव डालने वाली सत्ता भी सपने की तरह गायब हो जाती है। तुम्हें उसे पूरी तेजी के साथ दौड़ते हुए देखना चाहिये, पट, पट, पट! तो यह रहा उपाय।

अब, ऐसे लोग होते हैं जिनमें जबर्दस्त प्राण-शक्ति होती है। वे ऐसे योद्धा होते हैं जो एकदम सिर उठाकर कहते हैं : "ओह! एक शत्रु है। चलो, उसे कुचल देंगे।" लेकिन उसके लिये तुम्हारे अंदर ज्ञान और बहुत अधिक प्राणिक शक्ति होनी चाहिये। तुम्हें प्राण की दृष्टि से विशाल होना चाहिये। यह सबके लिये संभव नहीं है।

इस तरह बहुत-से अलग-अलग रास्ते होते हैं। सभी अच्छे हैं अगर तुम जानते हो कि कौन-सा तुम्हारी प्रकृति के अनुकूल है और तुम उसका उपयोग करना जानो।

अब एक छोटा-सा इलाज है जो बहुत सरल है, क्योंकि यह सहज-बुद्धि के एक छोटे-से निजी प्रश्न पर आधारित है..। तुम्हें जरा अवलोकन करना चाहिए और कहना चाहिये कि जब तुम डरते हो तो मानों तुम्हारा डर उस चीज़ को खींच रहा है जिससे तुम डरते हो। अगर तुम बीमारी से डरते हो तो मानों तुम बीमारी को खींचते हो अगर तुम किसी दुर्घटना से डरते हो तो मानों तुम दुर्घटना को आकर्षित करते हो। और अगर तुम अपने अंदर और अपने चारों ओर जरा नजर डालो तो तुम यह जान लोगे, यह एक अटल सत्य है। तो अगर तुम्हारे अंदर जरा भी सहज-बुद्धि है तो तुम कहोगे: "किसी चीज से डरना मूर्खता है। यह तो ठीक वैसा है मानों मैं उसे अपने पास आने के लिये इशारा कर रहा हूँ। अगर मेरा कोई दुश्मन होता जो मेरी हत्या करना चाहता तो मैं जाकर उससे यह ना कहता : "जानते हो, मैं ही हूँ जिसकी तुम हत्या करना चाहते हो!" यह कुछ वैसी ही बात है। इसलिये, चूंकि डर बुरा है इसलिये हम उसे ना रखेंगे। अगर तुम यह कहो कि तुम उसे तर्क करके रोक नहीं सकते तो इससे यह प्रकट होता है, कि तुम्हें अपने ऊपर अधिकार नहीं है और तुम्हें अपने-अपको वश में करने के लिये कुछ प्रयास करना चाहिये। बस यही है।

रहस्यवादियों के लिये सबसे अच्छा इलाज यह है कि जैसे ही किसी चीज का डर लगने लगे, बस भगवान् के बारे में सोचें और उन्हीं की भुजाओं में या उनके चरणों से चिपट जायें और भीतर या बाहर होने वाली हर चीज की जिम्मेदारी उन्हीं के ऊपर छोड़ दें- भय तत्काल गायब हो जायेगा।

रसोईघर विस्तार भवन

भूमि पूजा 21 जनवरी 2019 प्रातः 9:00 बजे : लंबे समय से आश्रम की बढ़ती जरूरतों को पूरा करने के लिए रसोईघर के

विस्तार की मंजूरी मिल गयी। इस काम के लिए तैयारी का आरम्भ होना वास्तव में आश्रम के लिए एक संतुष्टिदायक अवसर था। विस्तार के लिए चिह्नित मैदान को भूमि-पूजा के लिए तैयार किया गया। जमीन में पृथ्वी की उस बिंदु तक खुदाई की गई जहाँ तक नींव रखी जानी थी। बड़े गड्ढे को श्री अरबिंद और श्री माँ को समर्पित एक वेदी के साथ तैयार किया गया जिसे पूर्व में उगते हुए सूर्य के सामने रखा गया। बीच में यज्ञकुंड स्थापित किया गया। सुबह 9 बजे तक सभी लोग कुंड के चारों ओर एकत्रित हो गए थे। जैसे ही तारा दीदी सुबह 9 बजे कुंड के सामने अपने स्थान पर बैठीं, तानपुरे की तान पर ओम की आवाज़ वातावरण में गूँजने लगी। यज्ञ के बाद आश्रमवासियों द्वारा आधारशिला रखने के साथ साथ भूमि मंत्र का उच्चारण किया गया। एक शांत अनुभूति इस शांत वातावरण और उस स्थान

पर अनुभव की जा रही थी। समय-समय आश्रम के विस्तार द्वारा माता की सेवा में एक साथ खड़े होने की हमारी आकांक्षा को पूरा करते हुए इस अद्भुत अवसर को गाजर के हलवे के प्रसाद ने पूर्ण किया।

12 फरवरी 2019, श्री अरबिंद आश्रम - दिल्ली शाखा

दीपा बौरा

12 फरवरी 2019 मंगलवार को श्री अरविन्द आश्रम - दिल्ली शाखा का स्थापना दिवस मनाया गया।

श्रीमाँ के आशीर्वाद से श्री अरविन्द आश्रम - दिल्ली शाखा का औपचारिक

उद्घाटन 12 फरवरी 1956 को हुआ। उत्तर

भारत के अध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिये एक वरदान के रूप में 5 दिसम्बर 1957 को श्री अरविन्द के पवित्र देहावशेष पांडिचेरी के बाहर सबसे पहले यहीं प्रतिष्ठित किये

गये। तब से यह आश्रम उत्तरोत्तर प्रगति के पथ पर है। पवित्र देहांश स्थल तथा ध्यान कक्ष व्यस्त आश्रम जीवन के केन्दबिन्दु हैं। श्रीअरविन्द और श्रीमाँ का मार्गदर्शन, उसकी कृपा उनका स्नेह व आशीर्वाद उनके आश्रम वासी भक्तों को सदैव उपलब्ध है। यहाँ के सभी क्रिया-कलाप आन्तरिक जीवन को आध्यात्मिक गति प्रदान करने और

सत्ता की अन्तरतम गहराई में छिपे परम प्रभु से जुड़ने के प्रयास हैं। अब यहाँ के आश्रमवासी प्रत्येक वर्ष 12 फरवरी को श्री अरविन्द आश्रम – दिल्ली शाखा की स्थापना दिवस के रूप में मनाते हैं। इस दिन का सभी आश्रमवासियों को उत्सुकता से इन्तजार रहता है। इस दिन आश्रम में बहुत से कार्यक्रम होते हैं और सभी आश्रमवासी एकत्र होकर फोटो खिंचवाते हैं।

इस दिन श्रीमाँ और श्री अरविन्द के चित्रों की प्रदर्शनी भी रखी गई। साथ ही पुणे से आये ग्रुप ने भवानीभारती कार्यक्रम भी प्रस्तुत किया।

भवानी भारती कार्यक्रम

आश्रम गैलेरी

खुशहाली परियोजना

नैनीताल कैम्प

प्रेरणायें

वुडलैंड्स एसआर। एसईसी। स्कूल
हिम्मतपुर तल्ला उनचापुल रोड, हल्द्वानी

विषय: हमारे स्कूल पुस्तकालय के लिए खेल उपकरणों और पुस्तकों की प्राप्ति

प्रिय दीदी,

हमारे स्कूल के लिए आपके द्वारा दी गई खेल वस्तुओं के लिए बहुत-बहुत धन्यवाद। इस योगदान से हमारे विद्यालय में खेल उपकरणों की मात्रा में वृद्धि हुई है और अधिकतम संख्या में छात्रों को इसका लाभ मिल रहा है।

साथ ही, आपके द्वारा दी गई पुस्तकें हमारे पुस्तकालय के संसाधन को बढ़ाती हैं और बच्चों के लिए बहुत उपयोगी होती हैं।

हम हमारे संगठन के लिए आपके समर्थन की सराहना करते हैं।

बहुत धन्यवाद और सादर,

रंजना धोनी
मैनेजर
दिनांक: 01.12.18